ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

Volume 11, Issue 1, January 2024

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

IMPACT FACTOR: 7.583

| www.ijarasem.com | ijarasem@gmail.com | +91-9940572462 |

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

वर्तमान में दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की उपादेयता

Dr.Rajeev Chouhan

Sanvidha Lecturer in Political Science, Govt. Pg College, Barmer, Rajasthan, India

सार

भारतीय राजनीतिक चितंन में दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ के संगठन और विचारधारा को आकार देने में जैसी भूमिका निभाई वह अविस्मरणीय है। यह तर्क दिया जा सकता है कि भारतीय राजनीति में उपाध्याय का योगदान मुख्य रूप से पार्टी निर्माण के क्षेत्र में था। इसमें कोई अतिश्योक्ति भी नहीं है, क्योंकि उन्होंने लगभग पंद्रह वर्षों तक पार्टी सचिव के रूप में काम किया और उन्होंने जनसंघ को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक ताकत मंय बदलने हेतु अपने संगठनात्मक कौशल का परिचय दिया। वह निश्चित रूप से राजनीतिक मुद्दों में गहरी रुचि रखने वाले व्यक्ति थे और उन्होंने भारतीय राजनीतिक चिंतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक एवं सामाजिक चितंन की मूल अवधारणा के साथ एकात्म मानववाद का विचार जुड़ा हुआ है। उन्होंने अप्रैल 1965 में पूना में दिए गए चार व्याख्यानों में इसे व्यवस्थित उपचार दिया है। इस मामले पर उनकी सोच के तत्वों को जनसंघ के सामने चर्चा के लिए पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका था और उन्हें अपनाया गया था। उपाध्याय ने दिसंबर 1967 में कालीकट में जनसंघ के चौदहवें वार्षिक सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यावहारिक राजनीति में एकात्म मानववाद को लागू करने के लिए व्यवस्थित कदम उठाया। किंतु दो महीने बाद उनकी असामयिक मृत्यु ने इन बुनियादी सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा के लिए आगे के प्रयासों को कम कर दिया। पार्टी में जिन लोगों को उनकी विचारधारा विरासत के रूप में मिली, उन्होंने इस संबंध में उनके प्रयासों को जारी रखा। नतीजतन, यह विचारधारा राजनीतिक समीक्षा करने के लिए एक उपयोगी शस्त्र साबित हुई। राजनीतिक दार्शनिक का कार्य यह स्पष्ट करना है कि मनुष्य का स्वभाव वास्तव में कैसा है? इस आधार पर एक अच्छी राजनीतिक व्यवस्था की शर्तों को परिभाषित किया जा सकता है। उपाध्याय ने एकात्म मानववाद पर अपने पूना व्याख्यान में यह कार्य स्वयं के लिए निर्धारित किया था, जो आगे चलकर मनुष्य-मात्र के लिए अनुकरणीय बन गया। समाज में मनुष्य की भूमिका का निर्धारण करते हुए कहा था- "भारत में समकालीन राजनीति मनुष्य की समझ और समाज में उसकी भूमिका पर आधारित थी। स्वतंत्रता के बाद के भारत के राजनीतिक नेतृत्व ने अच्छे समाज की पश्चिमी धारणाओं को भारतीय परिस्थितियों में लागू करने का प्रयास किया था, किन्तु उसके परिणाम असंतोषजनक थे। आर्थिक विकास धीमा था, बेरोजगारी और शोषण बढ़ गया था, राष्ट्रीय एकीकरण कमजोर हो गया था, और सांस्कृतिक प्रगति धीमी थी"। इसके अलावा, उनका मानना था कि पश्चिमी सामाजिक, राजनीतिक विचार के प्रमुख स्कूल पश्चिम में ही मानवीय स्थिति को मौलिक रूप से सुधारने में विफल रहे हैं। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समाजवाद, उनकी राय में, कई भारतीयों द्वारा अनजाने में स्वीकार किए गए थे। इन्होंने अच्छे जीवन के लिए मानवीय खोज को केवल आंशिक समाधान ही प्रदान किये हैं और राष्ट्रवाद ने विश्व शांति के लिए खतरा ही पैदा कर दिया। जब लोकतंत्र को पूंजीवाद से जोड़ा गया, तो उसने शोषण को शासन के साथ जोड़ दिया। समाजवाद, लोकतंत्र-पूंजीवाद से जुड़ी अवधारणा की प्रतिक्रिया ने व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को लूट लिया। इन राजनीतिक अवधारणाओं में से प्रत्येक पर बल देते हुए उन्होंने कहा था, कि इन अवधारणाओं ने भौतिक अधिग्रहण को बढ़ा दिया। इस तरह लालच, वर्ग विरोध, शोषण और सामाजिक अराजकता को प्रेरित किया। यदि ऐसा है, तो भारत के लिए उपयुक्त मार्गदर्शक राजनीतिक सिद्धांत कौन से हैं? प्रस्तुत शोध-पत्र दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की वर्तमान समय में क्या प्रांसगिता है विषय को लेकर लिखा गया है। सूचना, संचार एवं प्रौद्योगिकी के कारण बदलते परिवेश में क्या उनका दर्शन आज भी प्रासंगिक है? ये ऐसे ज्वलंत प्रश्न है जिन्हें इस शोध-पत्र में उठाया गया है।

परिचय

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की योजनाएं सम्पूर्ण भारतवर्ष के लोगों के विकास के लिए स्थापित की गई हैं, एवं भारत सरकार इनके अम्ल के लिए दृढ़ संकल्पित है। सभी योजनाएँ बहुआयामी उद्देश्य के लिए भारत के स्वर्णिम एवं विकास हेतु अग्रसर है और इन योजनाओं की जानकारी प्रत्येक वर्ग के युवकों, विशेष समुदाय के लोगों के लिए अत्यंत आवश्यक है ताकि इनका लाभ उठाकर प्रत्येक समाज को विकास की ओर अग्रसारित किया जा सके उनकी योजनाओं के माध्यम से भारत के युवा बेरोजगार को उपलब्ध कराने, स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण देने, आवास उपलब्ध कराने, समुचित वर्ग को बिजली व्यवस्था उपलब्ध कराने, शिक्षा एवं स्वास्थ्य

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

व्यवस्था सुधारने, व्यापक विकास के अवसरों को बढ़ाने एवं तमाम अन्य योजनाओं के द्वारा सबको लाभांवित किया जाता है। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य विकास कौशल, विकास एवं अन्य उपायों के माध्यम से आजीविका के अवसरों में वृद्धि कर शहरी और ग्रामीण गरीबी को कम करना है। कोई भी नीति निर्धारक संगठन या सरकार जो गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ लाना चाहती हैं एवं मानव कल्याण के मार्ग में प्रशस्त होना चाहती हैं उसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के एकात्म-मानववाद एवं अंत्योदय के विचार भारत को आत्मनिर्भर बनाने का आधार हैं। वर्तमान भाजपा सरकार की आर्थिक एवं मानव कल्याणकारी नीतियाँ इस दिशा में अत्यंत प्रभावकारी हैं। जिसमें भविष्य की झलक दिखाई देती है। जिससे मानव कल्याण के लिए एक रचनात्मक एवं प्रगतिशील परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकें अपितु मानव कल्याण के स्थायी विकास को सकारात्मक दिशा मिल सके।

भारत की भूमि पर समय-समय पर ऐसे महामानव का अवतरण होता रहा है, जो स्वयं के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र और समाज के लिए ही जीता और मरता है। उसका जीवन आने वाली पीढियों के लिए आदर्श होता है, उसका चिंतन समाज के लिए मार्ग होता है और उसका कर्म देश को दिशा देने वाला होता है। ऐसे ही महामानव थे पंडित दीनदयाल उपाध्याय। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश को आवश्यकता थी अपनी एक ऐसी मौलिक विचारधारा की, जिसमें देश के अंतिम व्यक्ति की ङ्कचता करते हुए राजनीति को सेवा का साधन बनाया जा सके।[1,2,3]

देश के गौरव की रक्षा करते हुए इसे संपन्न और समृद्ध बनाने के लिए एक ङ्कचतन की। भारत माता की उर्वर धरती ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय जैसे महान सपूत को जन्म देकर एक नई दिशा दिखाने वाले को खड़ा कर दिया। अपने आदर्शों एवं विचारों के कारण भारत के लोगों के दिलो-दिमाग में स्थान बनाने वाले और एकात्म मानववाद की विचारधारा देने वाले जनसंघ के संस्थापकों में शामिल पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनीति के पथ प्रदर्शक, महान ङ्कचतक, सफल संपादक, यशस्वी लेखक और भारत माता के सच्चे सेवक के रूप में स्मरणीय रहेंगे।

25 सितम्बर 1916 उत्तर प्रदेश के मथुरा जिला के चंद्रभान में एक मध्यम वर्गीय परिवार में जन्म लेने वाले दीनदयाल उपाध्याय जी का बचपन विपत्तियों में बीता। संघर्ष ही साथी बना रहा और साहस संबल। जब उनकी आयु मात्र अढ़ाई साल की थी, तब उनके जीवन से पिता का साया उठ गया, 8 साल के हुए तो माता चल बसी। यानी पूरी तरह अनाथ हो गए। इसके बाद उनका पालन-पोषण उनके नाना के यहां होने लगा, लेकिन दुर्भाग्यवश 10 वर्ष की आयु में उनके नाना का भी देहांत हो गया। अब अल्पायु में ही इनके ऊपर छोटे भाई को संभालने की भी जिम्मेदारी। कोई भी आदमी होता तो इन विपत्तियों के सामने हार मान लेता,लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी और आगे बढ़ते रहे।

1951 में डा.श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वारा स्थापित भारतीय जनसंघ में पहले महामंत्री बनाए गए। 1967 में जनसंघ के अध्यक्ष बने, लेकिन महज 44 दिनों तक ही कार्य कर पाए, जो देश के लिए दुखद रहा। उनकी प्रतिभा, सांगठनिक शक्ति और कार्यक्षमता को देखकर डा.श्यामा प्रसाद मुखर्जी को कहना पड़ा कि यदि मुझे ऐसे दो दीनदयाल मिल जाएं तो मैं देश का राजनीतिक मानचित्र बदल दूंगा। राष्ट्र निर्माण व जनसेवा में उनकी तल्लीनता के कारण उनका कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं रहा। उनके पास जो कुछ भी था, वह समाज और राष्ट्र के लिए था। उनके विचारों और त्याग की भावना ने उन्हें अन्य लोगों से अलग सिद्ध कर दिया।

दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता माने जाते हैं। उनका उद्देश्य स्वतंत्रता की पुनर्रचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्व-दृष्टि प्रदान करना था। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए एकात्म मानववाद की विचारधारा दी। उनका विचार था कि आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव का सुख होना चाहिए। उनका कहना था कि 'भारत में रहने वाला, इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन हैं। उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य, दर्शन सब भारतीय संस्कृति है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है। इस संस्कृति में निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा।

किसी भी व्यक्ति या समाज के गुणात्मक उत्थान के लिए आ्थक और सामाजिक पक्ष ही नहीं उसका सर्वांगीण विकास अनिवार्यता है। वर्तमान में नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में चल रही केंद्र सरकार एकात्म मानववाद को केंद्र में रखते हुए गरीब से गरीब व्यक्ति के उत्थान एवं विकास के संकल्प के साथ समाज के कमजोर और गरीब वर्ग के उत्थान के लिए कार्य कर रही है। गत 8 वर्षों से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में चल रही सरकार ने गरीब-कल्याण के अपने लक्ष्य से पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के दर्शन और अंत्योदय की विचारधारा को साकार कर दिखाया है। 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास, के लिए केंद्र सरकार लगातार काम कर रही है।[2,3,4]

विचार-विमर्श

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

जब जनसंघ की स्थापना हुई उसके उपरांत दीनदयाल जी ने जनसंघ की अर्थ नीतियों में स्वदेशी, स्वावलंबन, भूमि व्यवस्था में परिवर्तन, आम जन को स्वावलंबी बनाने के लिए कुटीर उद्योग, श्रम का अधिकार, सयंमित उपभोग और कृषि का उत्पादन इत्यादि विषयों को शामिल किया था। यह सब नीतियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल और देश के सामने खड़ी चुनौतियों से निपटने के लिए कारगर थीं। यदि उस वक्त वैचारिक मतभेदों के कारण तत्कालीन सरकार ने इन आवश्यक सुझावों एवं विचारों से आँखें नहीं मूंदी होतीं तो आज देश की स्थिति दूसरी होती।

कोरोना संकट के दौरान अपने पांचवे राष्ट्र के नाम संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कोरोना के बाद के भारत की मजबूत रुपरेखा देशवासियों के सामने रखी। कोरोना के कारण हुए आर्थिक नुकसान एवं आर्थिक ढांचे के चरमरा जाने के पश्चात सबके मन में यही सवाल था कि आगे भारत की आर्थिक नीति क्या होगी ? सरकार किन नीतियों का सहारा लेकर नई आर्थिक व्यवस्था को खड़ा करेगी ?

गौर करें तो पिछले कुछ दिनों से स्वदेशी एवं आत्मनिर्भर भारत की चर्चा सबसे ज्यादा देखने-सुनने को मिली है। प्रधानमंत्री खुद ग्राम स्वावलंबन की बात सरपंचो से बातचीत के दौरान करते नजर आए थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक मोहन भागवत ने भी स्वदेशी आर्थिक मॉडल का सुझाव दिया था।

लिहाज़ा अटकलें लगाई जाने लगी थीं कि अब सरकार इसी दिशा में बढ़ने वाली नीतियों को अंगीकृत करेगी और हुआ भी यही। प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के नाम संबोधन में 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' की घोषणा की। इसके लिए प्रधानमंत्री ने 20 लाख करोड़ रुपये का अभूतपूर्व आर्थिक पैकेज देने का भी एलान किया। प्रधानमंत्री की इस ऐतिहासिक घोषणा से भारत के पारंपरिक उद्योग-धंधे जो आज नेपथ्य में दिखाई देते हैं, पुनः तकनीकयुक्त होकर भारत को आत्मनिर्भर बनाने में पहली पंक्ति में नजर आएंगे।

राष्ट्र के नाम संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कई महत्वपूर्ण बातें कहीं जिन्हें समझना आवश्यक है। उन्होंने आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए पांच स्तंभों का जिक्र किया। इसमें अर्थव्यवस्था, इन्फ्रास्ट्रक्चर, सिस्टम टेक्नोलॉजी ड्रिवेन व डिमांड और सप्लाई की ताकत को इस्तेमाल करने की बात कही।

अब इन्ही चीजों की बुनियाद पर आत्मनिर्भर भारत ईमारत तैयार करने की दिशा में सरकार बढ़ रही है। अगर चीजें ठीक ढंग बढ़ती रहीं तो सरकार एवं देशवासियों के दृढ़ विश्वास और आर्थिक पैकेज की संयुक्त शक्ति से निःसंदेह हम पुनः एक नए भारत, आत्मनिर्भर भारत का निर्माण कर सकेंगे। आर्थिक पैकेज में ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह किसी विशेष आर्थिक क्षेत्र अथवा केवल बड़े उद्योगपतियों के लिए नहीं है, बल्कि इस पैकेज में किसान, श्रमिक, छोटे-मझौले व्यापारी सभी को शामिल किया गया है।

यह कहना ठीक होगा कि ये पैकेज संघर्षरत लघु, कुटीर एवं सूक्ष्म उद्योगों के लिए एक संजीविनी बूटी की तरह है, जिसका सीधा लाभ गाँव, गरीब और छोटे कस्बों के लोगों को होगा। इससे गाँव आत्मनिर्भर होंगे, जिसके परिणामस्वरूप देश का आत्मनिर्भर होना स्वाभाविक है।[3,4,5]

प्रधानमंत्री ने स्थानीय वस्तुओं की महत्ता को समझाते हुए देशवासियों को लोकल प्रोडक्ट खरीदने एवं उसका प्रचार करने का भी आह्वान किया। ये सब तभी संभव होगा जब व्यवस्था का ज्यादा से ज्यादा विकेन्द्रीकरण होगा। आर्थिक विकेंद्रीकरण का जिक्र हो तो मानसपटल पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय का नाम आना स्वाभविक है क्योंकि आज़ादी के बाद से ही दीनदयाल उपाध्याय बार-बार अपने लेखों एवं उद्बोधनों में गांव को मजबूत करने के साथ-साथ आर्थिक केन्द्रीकरण के खतरों को इंगित करते रहे।

जब जनसंघ की स्थापना हुई उसके उपरांत उन्होंने जनसंघ की अर्थ नीतियों में स्वदेशी, स्वावलंबन, भूमि व्यवस्था में परिवर्तन, आम जन को स्वावलंबी बनाने के लिए कुटीर उद्योग, श्रम का अधिकार, सयंमित उपभोग और कृषि का उत्पादन इत्यादि विषयों को शामिल किया था। यह सब नीतियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल और देश के सामने खड़ी चुनौतियों से निपटने के लिए कारगर थीं। यदि उस वक्त वैचारिक मतभेदों के कारण तत्कालीन सरकार ने इन आवश्यक सुझावों एवं विचारों से आँखें नहीं मूंदी होतीं तो आज देश की स्थिति दूसरी होती।

बहरहाल, गत छह वर्षों में नरेंद्र मोदी सरकार ने कई ऐसी नीतियों को अमल में लाया है, जो गांवो को मजबूत करने की दिशा में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। मसलन ई-मंडी हो, अन्नदाता को ऊर्जादाता बनाने की अभिनव पहल हो, गांवों को डिजिटल बनाना हो अथवा जनधन, स्वच्छ भारत, उज्ज्वला इत्यादि तमाम योजनाओं के जरिये गांवो को मजबूत करना हो। इसके अलावा गांवों में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए सरकार ने पशुपालन और बांस की खेती को भी बढ़ावा दिया है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

इन सब बातों को बताने का अभिप्राय यह है कि इस सरकार ने गांवो में रोजगार मूलक योजनाओं की आवश्यकता को समझा है और उसकी नीतियों में दीनदयाल जी के विचारों का प्रभाव रहा है। परन्तु कोरोना नामक इस मौजूदा आपदा के कारण अब स्थिति सामान्य नहीं रही। लाखों की संख्या में श्रमिक अपने गाँव की तरफ लौट चुके हैं और अब भी लौट रहे हैं।

ऐसी विकट परिस्थिति में, साठ के दशक में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने हमारे अर्थतंत्र को मजबूत करने के लिए जो विचार दिए, वह पूरी तरह प्रासंगिक नजर आ रहे हैं। सुखद है कि आज सत्ता में दीनदयाल उपाध्याय की वैचारिक नींव पर खड़ी पार्टी है। यह सर्वविदित है कि भाजपा दीनदयाल द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद को अपना वैचारिक दर्शन मानती है। वर्तमान परिस्थितियों के लिहाज से दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों को बड़े स्तर पर लेकर आगे बढ़ना ही देश के लिए हितकारी रहता और सरकार ने वही किया है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक दर्शन भारतीयता के मूल से निकला हुआ दर्शन है, किन्तु वैचारिक मदभेदों के कारण देश में लंबे समय तक सत्ता में रहने वाली कांग्रेसनीत सरकारों ने उनके विचारों की उपेक्षा की, जिसका दुष्परिणाम हम आज बढ़ते पूंजीवाद, आर्थिक व्यवस्थाओं के केन्द्रीकरण, आयात पर निर्भरता, असंतुलित औद्योगीकरण आदि के रूप में देख सकते हैं।

दीनदयाल जी विकेन्द्रीकरण के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि हमारे अर्थव्यवस्था का आधार हमारे गांव और जनपद होने चाहिए। हमें आत्मनिर्भर होना चाहिए। अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा' में दीनदयाल जी लिखते हैं, "यह भी आवश्यक है कि हम आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनें। यदि हमारे कार्यक्रमों की पूर्ति विदेशी सहायता पर निर्भर रही तो वह अवश्य ही हमारे उपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से बंधनकारक होगी। हम सहायता देने वाले देशों के आर्थिक प्रभाव में आ जायेंगे। अपनी आर्थिक योजनाओं की सफलपूर्ति में संभव बाधाओं को बचाने की दृष्टि से हमें अनेक स्थानों पर मौन रहना पड़ेगा"।[4,5,6]

इसके आगे दीनदयाल बहुत गंभीर बात कहते हैं। "जो राष्ट्र दूसरों पर निर्भर रहने की आदत डाल लेता है, उसका स्वाभिमान नष्ट हो जाता है। ऐसा स्वाभिमानशून्य राष्ट्र कभी अपनी स्वतन्त्रता की कीमत नहीं आंक सकता है"।

भारत गाँव और किसानों का देश है। यहाँ गांव और किसान अगर समृद्ध हुए तो देश की प्रगति हर दिशा में संभव है। मजदूरों के पलायन और देश के सामने खड़ी आर्थिक चुनौतियों के बीच यकीनन दीनदयाल का दर्शन हमें रास्ता दिखा रहा है। नरेंद्र मोदी द्वारा घोषित आर्थिक पैकेज में लघु, सूक्ष्म कुटीर (अंशकालिक एवं पूर्ण कालिक) उद्योग को बढ़ावा देना वक्त की मांग थी, क्योंकि मजदूर अपने गांवो की तरफ पलायन कर रहे हैं। वो किसी तरह अपने घर पहुंचना चाहते हैं। उनके पास इस संकट की घड़ी में जीवनयापन करने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। भोजन और स्वास्थ्य के साथ आजीविका को चलाने का संकट उन्हें बेचैन किए हुए है।

एकबात स्पष्ट है कि श्रमिक वर्ग इतनी जल्दी अब अपना गांव-घर को छोड़कर शहरों की तरफ नहीं जायेंगे। इसलिए आवश्यक था कि उनके रोजगार की व्यवस्था उनके शहर या गाँव में ही की जाए। ये तभी संभव है जब कुटीर, लघु उद्योगों की शुरुआत हो और उन्हें इससे जोड़ा जाए।

कुटीर उद्योग की महत्ता को समझते हुए 25 जनवरी 1954 में पांचजन्य के लिए लिखे अपने विस्तृत लेख में दीनदयाल जी ने लिखा, "औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने, जनता को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने तथा सम्पत्ति के सम विभाजन की व्यवस्था करने के लिए हमें कुटीर उद्योगों को पुन: विकसित करना पड़ेगा। प्राचीन भारत में सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा इन कुटीर उद्योगों पर ही खड़ा था। उस समय न केवल देश स्वावलंबी था वरन उसकी लघुतम इकाई ग्राम तक स्वावलंबी थे। आर्थिक स्वाधीनता के लिए हमें इस रीढ़ को पुनः खड़ा करना होगा।"

दीनदयाल जी केवल कुटीर उद्योगों को पुरानी पद्धति से शुरू करने की बात नहीं करते थे बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए इस व्यवस्था को आगे बढ़ाने की बात करते थे।

यही समय है जब आयात पर निर्भरता छोड़कर स्वदेशी वस्तुओं पर निर्भरता बढ़ानी होगी और निर्यात के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ना होगा। यह सुखद है कि नरेंद्र मोदी सरकार ने वक्त की मांग को बखूबी समझा है। मजदूरों का पलायन, किसानों की समस्याएँ, रोजगार के संकटों को देखकर हम खुद समझ सकते हैं कि जो बात दीनदयाल जी ने उस वक्त कही थी वह सत्य के कितने करीब थी। हमारे पास फिर एक अवसर आया है जब हम आत्मनिर्भरता के लिए नई व्यवस्था को विकसित कर सकते हैं और सरकार यह करने की ओर कदम बढ़ा चुकी है।

परिणाम

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

दीनदयाल जी की दृष्टि में भारतीय शिक्षा विषय पर विचार करते हुए कुछ प्रश्न स्वभावत: मन में उठते हैं जैसे किसी भी समाज की शिक्षा व्यवस्था अच्छी है या बुरी। इसकी कसौटी क्या है? शिक्षा को अच्छी या बुरी के रूप में जानने का प्रयत्न भी उचित है क्या? शिक्षा का लक्ष्य क्या होना चाहिए? क्या स्वतन्त्र भारत की शिक्षा व्यवस्था अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रही है? शिक्षा कितनी वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए? शिक्षा में विषयानुराग कितना उचित या अनुचित है? ये अनेक प्रश्न हैं जिसका उत्तर हमारे शिक्षा निर्धारकों को खोजना है। भारत की स्वतंत्रता एक ऐसी सीमा रेखा है जो हमें आत्मालोचन के लिए ज्यादा प्रेरित करती है। आजादी के साथ जो शिक्षातंत्र हमें प्राप्त हुआ, वह मुख्यतः अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त शिक्षातंत्र था, लेकिन इस तंत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा शांति निकेतन जैसे विश्वविद्यालय थे । आर्य समाज की गुरुकुल शिक्षा के अभिकेन्द्र भी थे तथा डी.ए.वी. शिक्षा संस्थाओं का वलय भी। थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रयोग भी थे और अनेक साधु प्रयत्नों के लघु एवं दीर्घ उपक्रम भी। इस विरासत के साथ स्वतंत्र भारत ने गत दशकों में अनेक प्रयोग किए। आज भी शिक्षा की दृष्टि से जहाँ हम पहुँचे हैं, हम सन्तुष्ट नहीं हैं। हमें लगता है कि शिक्षा-व्यवस्था हमारी आने वाली पीढ़ी को वैसा नहीं बना पा रही है, जैसा हम बनाना चाहते हैं।

भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में पं. दीनदयाल जी के विचार उनकी पुस्तक 'राष्ट्रचितन' एवं पांचजन्य में उनके कुछ लेखों एवं आर्गेनाइजर में प्रकाशित उनके लेखों के अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि दीनदयाल जी एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जो समयानुकूल होने के साथ देशानुकूल भी हो। उनके अनुसार व्यष्टि और समष्टि को जोड़ने वाला प्रथम सूत्र है- 'शिक्षा'। वे शिक्षा को समाज की जननी मानते हैं। उनके अनुसार नए घटकों को पुराने घटकों से अपने सम्बन्ध भान रहे तथा वे अपने पुराने घटकों की जीवन की अनुभूति को मानकर और समझकर आगे चले तो उस समूह को समाज नाम प्राप्त होता है। अर्थात एक के बाद एक मानव जब दूसरों को, जो प्राय: उसके बाद जन्मे हो, विभिन्न क्षेत्रों के अपने सम्पूर्ण अनुभव को अथवा उसके सारभूत अंश को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान या संसर्गित करता है तो इस प्रक्रिया में एक निरंतर गतिमान मानव समूह की सृष्टि होती है जिसे समाज कहते हैं। यदि शिक्षा न हो तो मानव समाज का जन्म ही न हो।

समाज में शिक्षा के स्थान की प्राथमिकता एवं गरिमा का बोध कराते हुए दीनदयाल जी कहते हैं – हमारे शास्त्रकारों के अनुसार यह ऋषि ऋण है जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है। जब हम भावी सन्तति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं तो हमारी उनके प्रति उपकार भावना नहीं रहती अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है उसे आगे की पीढ़ी को सौंपकर उनके ऋण से उऋण होने की मनीषा रहती है। जॉन बुकन ने इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है- "हम भूत के ऋण से उऋण हो सकते हैं यदि भविष्य को हम अपना ऋणी बनाएं।" दीनदयाल जी मानते हैं कि शिक्षा हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है समाज द्वारा इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा का विक्रय समाज के लिए घातक होगा। अत: शिक्षा सुनिश्चित और नि: शुल्क होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में वह लिखते हैं कि बच्चे को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। जन्म से मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा व संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के अपने हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है। कल्पना करें कि भविष्य में शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करके अथवा उसे देने में असमर्थ होने के करण बच्चे पढ़ना बन्द कर दें तो क्या समाज इस स्थिति को सहन कर पायेगा। पेड़ लगाने और सीचने से पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार विनियोजित है। व्यक्ति शिक्षित होकर समाज के लिए काम करेगा ही; किन्तु जो व्यवस्था बचपन से ही हमें व्यक्तिवादी बनाती हो उससे समाज की अवहेलना करने वाले निकले तो आश्चर्य ही क्या? भारत में 1947 से पहले राज्यों में कहीं भी शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क थी। गुरुकुलों में तो भोजन व रहने की व्यवस्था भी आश्रम में ही होती थी। केवल भिक्षा मांगने के लिए ब्रह्मचारी समाज में जाता था। कोई भी गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली हाथ नहीं लौटाता था अर्थात समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी।[5,6,7]

वर्तमान की बदली हुई परिस्थिति में जब हमनें लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की है, इस सामाजिक दायित्व को वहन करने का दायित्व 'राज्य' का है। अपनी पुस्तक 'सिद्धांत और नीति' में दीनदयाल जी लिखते हैं कि "प्रजा को शिक्षा की उपेक्षा न करने देना, शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में उसकी सहायता करना, प्रत्येक स्थान पर विद्वान गुरुओं का प्राचुर्य रखना, देश-काल निमित्तों को शिक्षा के अनुकूल रखना, स्थान-स्थान पर शिक्षाश्रमों की व्यवस्था करना, सर्वत: उनके उत्साह को बढाए रखना राज्य के परम्परागत कर्तव्य हैं।" राज्य को शिक्षा के प्रति उत्तरदायी मानते हुए भी उपाध्याय जी शिक्षा के सरकारीकरण के विरुद्ध हैं। वे कहते हैं- बेशक एक कल्याणकारी राज्य में बच्चों की शिक्षा की मूल जिम्मेदारी सरकार की ही होती है, लेकिन हमें शिक्षा के सरकारीकरण से बचना चाहिए। वे शैक्षिक स्वायत्तता का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार – "शिक्षा का समय राज्य द्वारा होने के उपरांत भी सरकारीकरण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा संस्थाओं का प्रबंध करने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के स्वायत्त निकाय होने चाहिए। सरकार के विभाग के रूप में उनका चलना ठीक नहीं। सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं का भेद समाप्त कर देना चाहिए। सभी क्षेत्रों के शिक्षकों के वेतन क्रम व अन्य सुविधाएं ऐसी हो जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में आने में संकोच न करें। शिक्षा संस्थाओं को मैनेजरों अथवा प्रबन्ध समिति की निजी सम्पत्ति बनने देना उचित नहीं।"

"स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर निजी सम्पत्ति बनाने की प्रवृत्ति की ओर से भी सावधान रहना आवश्यक है। अतःस्वायत्तता का अर्थ शिक्षा की दुकानदारी न होकर संविधानत: सुपरिभाषित स्वायत्त राष्ट्रीय निकाय के अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था का होना है।" यहीं वस्तुत: दीनदयाल जी का अभिप्रेत था। इसी प्रकार वे शिक्षा के दोहरे ढाँचे, जिसमें 'पब्लिक स्कूल' व सरकारी अथवा निजी स्कूल की व्यवस्था होती है, के भी विरुद्ध हैं। वे पब्लिक स्कूलों को 'राष्ट्रीयतानाशक' प्रभाव छोड़ने वाले विद्यालय के रूप में वर्णित करते हुए

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

कहते हैं- "शिक्षा समाज में भेद निर्माण करने वाली न होकर एकात्मभाव निर्माण करने वाली हो, भारत के 'पब्लिक स्कूल' इस उद्देश्य के प्रतिकूल हैं। आवश्यकता है, सभी शिक्षण संस्थाओं का स्तर ऊंचा उठाया जाए।"

उनके विचार में समाज व राज्य संस्था के द्वारा जहाँ शिक्षा का योग्य नियमन होना चाहिए, वहीं शिक्षातत्व पर बाहरी साम्राज्यवादी ताकतें हमारे समाज को अस्वस्थ न करें, इसका ध्यान रखना भी जरूरी है। इस दृष्टि से वे भारत में ऐसी संस्थाओं को खतरनाक मानते हैं। भारत में बहुत सी शिक्षा संस्थाएं ईसाई मिशनों के द्वारा चलाई जा रही है। बहुधा ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा चलाई गयी शिक्षा संस्थाओं एवं शिक्षा क्षेत्र में उनके प्रयत्नों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की जाती है। इतना ही नहीं आज के अनेक पढे-लिखे व्यक्ति तथा देशभक्त कहे जाने वाले भारतीय संस्कृति के प्रेमी भी अपने बच्चों को शिक्षा के लिए इन ईसाई स्कूलों में भेजते हैं। किसी भी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप एवं प्रभाव नहीं सहन कर सकते। आर्थिक क्षेत्र में भी बाहरी सहायता व पूंजी भय का कारण बन जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में विदेशियों को अधिकार देना कहाँ तक उचित है? अपरिपक्व मस्तिष्क पर विदेशी शक्तियों को प्रभाव डालने की अनुमति देना जैसे जड़ को काटने की स्वतन्त्रता देना ही है। दीनदयाल जी मानते हैं कि शिक्षा केवल शालेय उपक्रम मात्र नहीं है वरन एक सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। शालेय शिक्षा उसका महत्वपूर्ण भाग होते हुए भी केवल शालेय शिक्षा से समाज सर्वांग रूप से सुरक्षित नहीं हो सकता। अतः वे एक शिक्षकत्रयी का वर्णन करते है। उनकी मान्यता है कि शिक्षा के व्यापक अर्थों में समाज का प्रत्येक घटक ही शिक्षक है। अतः प्रथम शिक्षक है- समाज, द्वितीय शालेय अध्यापक एवं तृतीय है- व्यक्ति स्वयं। इस शिक्षकत्रयी को भारतीय शास्त्रकारों नें निम्न वाक्यों में प्रतिबिंबित किया है –

1. माता प्रथमा गुरु:

2 आचार्य देवो भव:

3 आत्मदीपो भव:

उन तीनों शिक्षकों के शिक्षा देने के अलग अलग माध्यम है, प्रथम-संस्कार, द्वितीय-अध्यापन व तृतीय-स्वाध्याय।

माता प्रथमा गुरू (संस्कार)

संस्कार ही शिक्षा का प्रथम माध्यम है जो व्यक्ति समाज द्वारा ग्रहण करता है। संस्कार की दृष्टि से समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक है। व्यक्ति सबसे पहले जिस सामाजिक घटक के सम्पर्क में आता है वह माता है। अत: कहा गया कि माता प्रथमा गुरुः। फिर व्यक्ति समाज के अन्य घटकों के सम्पर्क में आता है। एक सामाजिक परिवेश रहता है जिसका नवजात एवं विकसित हो रहे बालक पर अनजाने में ही प्रभाव होता रहता है। इसी प्रभाव को उपाध्याय जी संस्कार कहते हैं। माता-पिता, परिजन = पुरजन-गुरुजन, अग्रपाठी, सहपाठी, समाज के नेता और अधिष्ठाता। ये सभी विभिन्न प्रकार के संस्कार निरन्तर डालते रहते हैं। अत: समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक है। उसका यह सामाजिक दायित्व है कि वह अपने व्यवहार से सत्संस्कारी परिवेश का समाज निर्माण करे। इस दायित्व बोध से शून्य होकर समाज यदि केवल शालेय शिक्षा व शिक्षक पर ही आश्रित होगा तो उसकी प्रगति नितान्त संदिग्ध मानी जायेगी। शिक्षा में सर्वजन सहभागिता आवश्यक है। यह केवल कुछ विशेषज्ञों मात्र का विषय नहीं है। उसे शैक्षिक लोकतंत्र की भी संज्ञा दी जा सकती है।

आचार्य देवो भव (अध्यापन)

शिक्षालयों की व्यवस्था कर औपचारिक अध्यापन के माध्यम से शिक्षा देना एक सर्वमान्य शैक्षिक तरीका है। अक्षर ज्ञान व कुछ पाठ्यक्रम के माध्यम से हम व्यक्ति को शिक्षित करते हैं। यह औपचारिक शिक्षा निर्जीव कर्मकाण्ड न बन जाय, अत: आवश्यक है कि शिक्षा के व्यापक अर्थों को समझने वाले व्यक्ति अध्यापक बनें तथा समाज शिक्षक को सर्वाधिक सम्मानित पद के रूप में स्वीकार करे। शिक्षक की वर्तमान स्थिति व अपने सुझावों को प्रतिपादित करने वाला एक वर्णनात्मक लेख दीनदयाल जी ने 'आर्गेनाइजर' में 17 सितम्बर 1962 को लिखा। उसमें उपाध्याय जी ने अपने स्नेही शालेय अध्यापक से अध्यापक बनने की अपनी इच्छा जताई तो उनके उन शुभेच्छु अध्यापक ने जो कुछ कहा उसका वर्णन करते हुए उपाध्याय जी लिखते हैं कि "वह चुप हो गये, उनके चेहरे पर ठंडी उदासी छा गयी, फिर उन्होंने पर्याप्त कड़वाहट के साथ कहा- कृपा कर तुम कुछ भी कर लो। चाहे तुम मोची बन जाओ, चाहे सड़क के किनारे बैठ कर और कर जूते गाँठने का काम करो लेकिन इस गंदले मास्टरजी के काम को मत अपनाओ। अध्यापक बनने से तुम्हारी इस लोक व परलोक, दोनों लोकों के जीवन की समस्त सम्भावनाएं निश्चित रूप से समाप्त हो जायेंगी।" अपने शुभेच्छु पूर्वाध्यापक की बात न मानते हुए उपाध्याय ने टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश लिया तथा वहाँ के अनुभव को अपने लेख में इस प्रकार वर्णित करते हैं – "यथासमय मैंने प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश लिया। मैने वहाँ देखा कि शिक्षक का यह उदात्त कार्य आज आदर्शवादी व सेवाभावी लोगों को आकर्षित नहीं कर पा रहा है। केवल वह लोग जो अन्यत्र स्थान पाने में असमर्थ रह जाते हैं अध्यापक बन जाते हैं। आई.सी.एस. से लेकर नायब तहसीलदार तक की विभिन्न परीक्षाओं में ये प्रशिक्षणार्थी बैठते थे, लेकिन इनमें जो अनुत्तीर्ण हो जाते, वे ही अध्यापक बनने की सोचते थे। जॉनसन ने कहा है- शेष सब धन्धों से बचे हुए अधम जनों का धन्धा राजनीति है। वस्तुत: भारत में अध्यापन कुण्ठाग्रस्त लोगों के लिए बचा हुआ धन्धा है। इस प्रकार से यह आत्महत्या का पूर्व सोपान है।" जिस शिक्षक के हमारी प्राचीन समाज व्यवस्था ने 'आचार्य देवो भव' कहा, उसके आभामण्डल का यह अपखण्डन

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 1, January 2024 |

बहुत ही चिन्ताजनक है। यदि हमें अपने समाज को सही अर्थों में सुशिक्षित करना है तो अध्यापक की गरिमा को पुनः स्थापित करना होगा।

आत्मदीपो भव (स्वाध्याय)

समाज की शिक्षक अवस्था तथा औपचारिक अध्यापन व्यवस्था के बाद व्यक्ति स्वयं ही अपना शिक्षक होता है। स्वाध्याय मनुष्य का स्वयं अध्यापन है। पठन, मनन और चिन्तन के सहारे मनुष्य ज्ञान को आत्मसात करता है। बिना स्वाध्याय के न तो प्राप्त ज्ञान टिकता है न ही बढ़ता है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान को जीवन का अंग बनाकर तेजस्वी बनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अत: 'स्वाध्यायन्मा प्रमद:' (स्वाध्याय में आलस्य मत करो), यह कुलपति का स्नातक को दीक्षान्त के अवसर पर आदेश रहता है। पुस्तकालय आदि की व्यवस्था स्वाध्याय के लिए आवश्यक है। उपाध्याय जी समाज में शिक्षामय वातावरण के लिए घर व नगर में पुस्तकालयों की स्थापना तथा पठन-पाठन का वातावरण बनाने पर विशेष बल देते हैं। इसके बिना शालेय शिक्षा का भी वांछित टिकाव एवं विकास संभव नहीं है। शालेय शिक्षा अकेली ही मनुष्य का निर्माण नहीं करती। संस्कार और अध्यापन का बहुत सा ऐसा क्षेत्र है जो शालेय क्षेत्र के बाहर है। यदि इन दोनो क्षेत्रों में विरोध रहा तो विद्यार्थी के जीवन में एक अंतर्द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है। एक समन्वित, एकीकृत, सर्वांगपूर्ण अखण्ड व्यक्तित्व का विकास होने के स्थान पर उसकी प्रकृति में विभक्त निष्ठाओं का समावेश हो जाता है। समाज और उसके बीच एक खाई पड़ जाती है। आज केवल औपचारिक शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है, तथा वांछित परिणामों को न प्राप्त कर सकने की कुंठा के कारण शिक्षा पद्धति की निन्दा तथा परस्पर आरोप-प्रत्यारोप का वातावरण बन रहा है। उपाध्याय जी इसे समाज की अस्वस्थ अवस्था का परिचायक मानते हैं। औपचारिक शिक्षा तो संस्कार एवं स्वाध्याय के बीच की कड़ी है। शिक्षा की सर्वांगपूर्णता की प्रथम शर्त है- 'संस्कारक्षम समाज' अर्थात प्रत्येक व्यक्ति में शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है। परिवार, हाट-बाजार, खेत-खलिहान ये सब शिक्षालय के ही रूप है। समाज में यह चेतना उत्पन्न करना सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों संगठनों व नेताओं का कार्य है। इस कार्य को किए बिना केवल सरकारी माध्यम से शिक्षा की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था की कल्पना करना सर्वथा अव्यवहार्य है। समन्वित शिक्षकत्रयी ही समाज में सर्वांगपूर्ण शिक्षा नीति की प्रत्याभूति है। इसी क्रम में उपाध्याय जी शिक्षा के लिए स्वभाषा की अपरिहार्यता को भी आवश्यक बताते हैं।[6,7,8]

निष्कर्ष

उपाध्याय जी के सम्पूर्ण वैचारिक प्रतिपादन में शिक्षा व संस्कार व्यवस्था का सर्वाधिक महत्व है। वे समाज के चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति की मूलभूत आधारशिला शिक्षा को ही मानते हैं। उस सन्दर्भ में किसी बाद व व्यवस्था विशेष के आग्रह को उपाध्याय जी असंगत मानते हैं। शिक्षा से प्राप्त सामर्थ्य समाज को सदैव सही रास्ता खोज लेने के लिए सक्षम बनाता है। अत: राजनीतिक व आर्थिक कारणों से योजनाकार जब शिक्षा की अवहेलना करते हैं तब उपाध्याय जी इसे अनुचित करार देते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा मद में व्यय की कटौती की आलोचना करते हुए उपाध्याय जी ने कहा था कि "चौथी पंचवर्षीय योजना की सबसे कमजोर कड़ी है, 'शिक्षा' इस मद में 1965-66 में 180.13 करोड़ रुपये की जगह अब केवल 98.38 करोड़ रूपये का प्रावधान है। शिक्षा का क्रम तो अबाध रूप से चलना चाहिए। उसे यदि बीच में तोड़ दिया गया या कमजोर कर दिया गया तो आगे जोड़ना बहुत कठिन हो जायेगा।"

इस प्रकार उपाध्याय जी अपने देश-काल के अनुरूप भारतीय शिक्षा के वैदिक आदर्श को स्थापित करने के पक्षधर दिखाई देते हैं। सब दिशाओं से मिले शुभ ज्ञान, यह हमारे दर्शन का दिशाबोधक सिद्धान्त है। लेकिन हमें यह भी तय करना होगा कि हमारे देश व समाज के हित में हम क्या ग्रहण करें। यह हमारा अधिकार ही नहीं अपितु वांछनीय भी है।[8]

संदर्भ

1: दीनदयाल उपाध्याय: राष्ट्रचिन्तन

2: एकात्म दर्शन: राष्ट्रजीवन के अनुकूल अरचना

3: भारतीय जनसंघ: सिद्धान्त और नीति

4: पॉलिटिकल डायरी (हिन्दी)" स्वभाषा – सुभाषा

5: विचार- वीथी: मिशनरी और शिक्षा संस्थाएं: पाञ्चजन्य

6: Deendayal Upadhyaya, Teachers Day, Some Thoughts, Organiser, 17 September 1962.

7: दीनदयाल उपाध्याय, चतुर्थ योजना: उद्देश्य और संभावनाएं; पांचजन्य, 08 अप्रैल 1966

8: डॉ. महेश चन्द्र शर्मा – दोन दयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |